Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेदप्रकाश

संस्थापक : स्वर्गीय श्री गोविन्दराम हासानन्द

वर्ष २६, अंक १०] वार्षिक मूल्य : पाँच रुपया [मई, १६८०

सम्पा० : विजयकुमार आ० सम्पादक : स्वा० जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ऋत की शक्ति

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः, ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ।। ऋक् ४-२३।

ऋषि—वामदेवो गौतमः । देवता—ऋतम् इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् ।

(ऋतस्य) सत्य नियम की (शुरुधः) शोकनिवारक दीप्तियाँ (पूर्वीः) पूर्ण तथा सनातन (सन्ति) हैं (ऋतस्य) सत्यनियमों अथवा सत्यस्वरूप ब्रह्म का (धीतिः) धारण, आचरण या ध्यान (वृजनानि) पापों, वर्जनीय वृत्तियों, शत्रुओं व वस्तुओं का (हन्ति) नाश करता है ।

(ऋतस्य) सत्य-अटल नियम अथवा ब्रह्म का (बुधानः) जगानेवाला (शुचिमानः) पवित्र तथा दीप्त करनेवाला (श्लोकः) मधुर तथा तीव्र उद्घोष (आयोः) मनुष्य के (बधिरा कर्णा) बहरे कानों को भी (आततर्द) उद्वेलित कर देता है—जबर्दस्ती पहुँच जाता है ।

निष्कर्ष—सत्य (ऋत) और ब्रह्म एक ही हैं । किसी एक को स्वीकारना दूसरे का भी स्वीकार है । सत्य या ब्रह्म को स्वीकारने के बाद सब पापवृत्तियाँ तथा क्रियाएँ स्वयमेव समाप्त हो जाती हैं क्योंकि सत्यनियम समयानुसार व्यक्ति की कमियों को दूर करते रहते हैं ।

कितना ही दुष्ट क्यों न हो, कितना ही बहरा क्यों न हो सत्य के उद्घोष को एक न एक दिन सुनता ही है, उसमें जल की शीतलता तथा शान्ति होती है । जो सब प्रकार के दुःखों, रोगों को नष्ट करके ज्ञान-प्रकाश को देता है, अंधकार के आलस्य व भय को दूर करके प्रकाश की प्रेरणा तथा उद्यम प्रदान करता है ।

केवल मात्र ऋत का आश्रय लेकर मनुष्य गौतम—अधिक से अधिक ज्ञानी तथा जितेन्द्रिय अथवा वामदेव—सुन्दर गुणों व प्रवृत्तियों को चाहने वाला बन जाता है ।

ऋत सब पापों को नष्ट करता है । ऋत को प्राप्त करने के लिए सब पापों व दोषों को छोड़ना आवश्यक है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशेष—ऋतम्—यथार्थ सब विद्याओं के आधार वेदशास्त्र, ब्रह्म, सत्य, यश, यज्ञ सत्यविज्ञान-कारण-व्यवहार-धर्म-न्याय) जल, स्वा० द० ब्रह्म वा ऋतम्। शत० ओमित्येतदेवाक्षरमृतम्। जै०

सत् की रक्षा

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरद् ऋजीयः तदित्सोमो अवति हन्त्यासत्॥

ऋक् ७-१०४-१२, अथर्व ८-४-१२

ऋषि—मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः। देवता—सोमः।

(सुविज्ञानं) सुष्ठु प्रकार से विशिष्ट ज्ञान की (चिकितुषे) कामना करनेवाले (जनाय) मनुष्य के सन्मुख (सत् च असत् च) सत्वगुणयुक्त तथा सत्वगुणविहीन (वचसी) पूर्व विद्वानों के कहे हुए वचन (पस्पृधाते) स्पर्धा करते हैं। कभी किसी पक्ष की युक्तियाँ प्रबल मालूम होती है, कभी दूसरा पक्ष आकर्षक तथा ग्राह्य प्रतीत होता है।

इस मन्त्र के ऋषि (मैत्रावरुणिः) सब के साथ मित्रदृष्टि रखकर वरणीय मार्ग की कामना करनेवाले (वसिष्ठः) अत्यन्त जितेन्द्रिय ऋषि के पदचिह्नों पर चलनेवाला साधक (सोमः) सोम सच्ची शान्ति की कामना करनेवाला बनकर (तयोः) उन दोनों पक्षों में से (यत् सत्यं) जो सत्य के अनुकूल तथा निकट होता है और (यतरद् ऋजीयः) जो पक्ष अधिक सरल तथा नियमानुकूल होता है (तत्) उस पक्ष के वचनों की (अवति) रक्षा करता है, उन्हें अपनाता है, उस पक्ष के लोगों को बढ़ावा देता है। (असत्) जो सत्वगुण से रहित तथा असत्य के निकट होता है उसे (हन्ति) मार देता है, नष्ट कर देता है।

निष्कर्ष—सत्-असत् रूप में देवासुर संग्राम शाश्वत है। शान्ति को कायम करने की कामनावाले सत्य तथा सरल मार्ग को ग्रहण करते हैं। असत्य तथा सत्वगुण-विहीन मार्ग का त्याग करते हैं।

सोम=शान्ति का संस्थापक बनने के लिए, (मैत्रावरुणिः) सबके प्रति मित्र-दृष्टि बनाए रखना तथा सदा असत्य को छोड़कर सत्य को ग्रहण करने के लिए उद्यत रहना चाहिए। ये दोनों गुण तभी सम्भव हैं जब मनुष्य जितेन्द्रिय=वशी बनकर ही सन्तुष्ट न हो जाए, अपितु जितेन्द्रियों में भी श्रेष्ठ बनने का प्रयत्न करे।

मिथ्या का नाश

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति, न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्य सद् वदन्तं, उभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते॥

ऋक् ७-१०४-१३ अथर्व ८-४-१३

ऋषि—मैत्रा वरुणिर्वसिष्ठः। देवता—सोमः।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(सोमः) शान्ति की स्थापना चाहनेवाला व्यक्ति अथवा शान्ति का रक्षक परमात्मा (वृजिनं) पाप, अत्याचार को (उ) निश्चय ही (न) नहीं (हिनोति) बढ़ाता है (वा) तथा (मिथ्या धारयन्तम्) मिथ्याचरण द्वारा शासन को चलानेवाले (क्षत्रियम्) राजा या शासक को भी (न उ हिनोति) नहीं बढ़ाता है।

(रक्षःहन्ति) मिथ्याचारी, द्वेध का व्यवहार करने वाले राक्षस को वह मार देता है—समाप्त कर देता है तथा (असद् वदन्तम्) झूठ बोलनेवाले मनुष्य को भी मार देता है। (उभौ) ये दोनों ही (इन्द्रस्य) इन्द्र के (प्रसितौ) पाश में (शयाते) सोते हैं—जकड़े पड़े रहते हैं।

निष्कर्ष—सबके साथ मित्रदृष्टि रखनेवाले, अपनी भावनाओं पर काबू रखनेवाले लोग ही शान्ति की स्थापना कर सकते हैं और ये लोग दुष्ट या मिथ्याचारी को कभी बढ़ने नहीं देते। उसे अपने पाश में बाँधकर रखते हैं या समाप्त कर देते हैं। दुष्ट-दमन के बिना शान्तिस्थापना संभव नहीं है।

दुष्ट राक्षस को दण्ड न देना दया नहीं, सज्जनों के साथ शत्रुता का व्यवहार तथा अपने पर पूर्ण नियन्त्रण के अभाव का प्रदर्शन है।

अत्यन्त दयावान् न्यायकारी शासक नहीं बन सकता। सच्चा शासक (इन्द्र) मिथ्याचरण करनेवाले को किसी अवस्था में सह सकेगा यह तो कल्पना के परे की बात है, क्योंकि वह तो मिथ्या विचार को धारण करनेवाले को भी अपने लक्ष्य तक बढ़ने नहीं देता है।

जो जागत है सो पावत है

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह, तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥

ऋक् ५-४४-१४

ऋषि—अवत्सारः काश्यपः। देवता—विश्वेदेवाः। विराट् त्रिष्टुप्।

(या) जो (जागार) जागता है—जागरूक रहता है, (तम्) उसकी (ऋचः) स्तुति करनेवाले लोग (ऋचः कामयन्ते) स्तुतियां करते हैं। (यो जागार) जो जागरूक है (तमु) उसे ही (सामानि) शान्ति के प्रयोग व वचन (यन्ति) प्राप्त होते हैं।

(यो जागार) जो जागरूक रहता है (अयं सोमः) यह शान्ति की स्थापना करनेवाला शान्त नेता (तम् आह) उससे अभिमुख होकर कहता है कि (अहं) मैं (तव सख्ये) तेरी मित्रता में (न्योकाः) निश्चिन्त स्थान रखनेवाला (अस्मि) हूँ।

निष्कर्ष—जागरूक व्यक्ति के ही गुण गाए जाते हैं। लापरवाह अपने कर्तव्य की अपेक्षा करनेवाले के कोई गुण नहीं गाता। जागरूक व्यक्ति ही शान्ति स्थापित कर सकता है, और फिर स्वयं शान्त होकर बैठ सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जागने पर ही गुणगान किया जाता है, अथवा सोने से पहले स्तुति की जाती है। जाग्रत् अवस्था में ही शान्ति की अधिक जरूरत होती है। स्वप्नावस्था में सदा अपेक्षाकृत अधिक शान्ति होती है।

जागरूक व्यक्ति की ही परमात्मा सहायता करता है, उसका वह मित्र बनता है। उसके घर में बसेरा करता है।

जागरूक वही रह सकता है जो (अवत् सार) अपने सारभाग वीर्य की रक्षा करता है, जितेन्द्रिय है तथा चारों तरफ देखता है, सब पर दृष्टि रखता है—काश्यप है।

ओक का अर्थ है घर। ओखृ—शोपण-अलं-अर्थयो—से बनाएँ तो अलंकृत करनेवाला भी हो सकता है। इस प्रकार जागरूक ही अलंकृत हो सकता है।

सृष्टि (संसार) नदी

अश्मन्वती रीयते संरभध्वं, उत्तिष्ठत प्रतरता सखायः।
अत्रा जहीमो अशिवा ये असन् शिवान्वयमुत्तरेमाभिवाजान् ॥

ऋक् १०-५३-८। यजु ३५-१०। अथर्व १२-२-२६

ऋषि—भृगुः। देवता—मृत्युः। त्रिष्टुप्
सुचीकः विश्वेदेवाः

यह दुनिया (अश्मन्वती) पथरीली नदी की तरह (रीयते) बह रही है। (संरभध्वं) इसलिए संभलकर चलो (सखाय) मित्रो (उत्तिष्ठत) यदि ठोकर लगने से गिर गए हो तो पुनः उठो और प्रयत्न करके (प्रतरत) इस नदी को तैरकर पार हो जाओ।

नदी पार करने के लिए वजन कम-से-कम होना चाहिए, यदि शरीर के अतिरिक्त कुछ भी न हो तो सबसे अच्छा। इसलिए (ये अशिवा असन्) हमारे अन्दर जो बुराइयाँ हैं, हमारे बाहर परिग्रह रूप में जो पदार्थ या बाह्याडम्बर हैं, वे अगर साथ रहे तो हमारा अकल्याण होगा, हम तैर नहीं सकेंगे (जहीमः अत्र) नदी पार करने से पहले ही उसे छोड़ दो, और हमारे लिए जो (शिवान्) कल्याणकारी (वाजान्) ज्ञान, बल, धन, अन्न आदि पदार्थ हैं (अभि) उनके अभिमुख होकर (उत्तरेम) ऊपर की ओर प्रगति करके तर जाओ।

निष्कर्ष—पथरीली नदी को तैरने के लिए (भृगुः) भ्रस्ज पाके—परिपक्व दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। अथवा—सुचीकः—सूचि-सुई के कार्य करनेवाला—फटी हुई चीज को सीनेवाला—टूटी हुई चीज को जोड़नेवाला दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। यही दृष्टिकोण हमारा कल्याण कर सकता है—हमें पथरीली नदी से पार उतार सकता है।

मृत्यु को तरने या पार करने का भी यही सर्वोत्तम प्रकार है।

यह मन्त्र बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि तीनों वेदों में हैं। सामवेद के स्थान में यजुर्वेद में आकर त्रयी मन्त्र बनने का विशेष महत्त्व है, क्योंकि सामवेद क्रियात्मक रूप में ऋग्वेद का ही अंश है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परिग्रह पतित करता है

या मा लक्ष्मीःपतयालूरजुटा, अभिचस्कन्द वन्दनेव वृक्षम् ।
अन्यत्रास्मत्सवित स्तामितोधाः, हिरण्यहस्तो वसुना ररा णः ॥

अथर्व ७-११५-२

ऋषि—अथर्ववाङ्गिराः । देवता—सविता जातवेदाः । त्रिष्टुप् ।

(इव) जैसे (वन्दना) अमरवेल (वृक्षम्) वृक्ष पर (अभिचस्कन्द) चारों ओर फैलकर उसे सुखा देती है, वैसे ही (या) जो (अजुष्टा) असेवित, काम में न आनेवाली और (पतयालू) पतित करने की प्रवृत्तिवाली (लक्ष्मीः) सम्पत्ति (मा अभि चस्कन्द) मेरे चारों ओर फैल गई है—एकत्रित हो गई है ।

हे (सवितः) सबके उत्पादक व प्रेरक प्रभो (ताम्) उस बेकार या पातकी सम्पत्ति को (इतः अन्यत्र) मेरे पास से हटाकर कहीं दूसरी जगह (धाः) रख दे । आप (हिरण्यहस्तः) सुनहरी किरणोंवाले अथवा हितकर तथा रमणीय धनों को सदा हाथ में रखनेवाले (नः) हमें (वसु) दूसरों का बसानेवाले, मन को निश्चल करनेवाले, बुराइयों का नाश करनेवाले धन को (नः) हमें (ररा णः) दीजिये ।

विशेष—वसु—१ वसनिवासें—दूसरों को बसानेवाला, उजाड़नेवाला नहीं ।
२ वसु स्तम्भे—मन को निश्चल, स्थिर करनेवाला, चंचल रखनेवाला नहीं ।
३ वसु—स्नेहच्छेदापहरणेषु—बुराइयों को नाश करनेवाला—पतित करनेवाला नहीं ।

निष्कर्ष—सम्पत्ति का आवश्यकता से अधिक संग्रह गिरानेवाला, पतित करने वाला होता है ।

हमें ऐसी सम्पदा मिले जो बुराइयों से दूर रक्खे, मन को चंचल न करे, अपितु स्थिर रक्खे । यही भावना अथर्वा ऋषि द्वारा संकेतित है । यदि मन स्थिर होगा तो हम लक्ष्मी द्वारा पतित नहीं किये जा सकेंगे ।

हमारी सम्पदा यदि उत्पादन-कार्यों में लगी होगी, तो वह बेकार अजुष्टा-परिग्रह रूप नहीं होगी; और इसलिए पतन का कारण भी नहीं बन सकेगी । उत्पादन में न लगी सम्पति ही पतनकारिणी होती है—यह संकेत देवतावाची-सविता—कर रहा है । जो सम्पदा दूसरों के काम न आएगी (दान न दी जाएगी) और अपने उचित भोग में नहीं आएगी—वह पतित करेगी ।

कर्म फल अनिवार्य है

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तात्, न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः ।
दिवः स्पशः प्रचरन्तीदमस्य, सहस्राक्षा अतिपश्यन्ति भूमिम् ॥

अथर्व ४-१६-४

ऋषिः—ब्रह्मा । देवता—वरुणः—सत्यानृतान्वीक्षणम् । त्रिष्टुप् ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कोई पाप या अत्याचार करके (द्याम्) द्युलोक को लांघकर (परस्तात्) उसके भी परे (अतिसर्पात्) चला जाए तो भी (सः) वह (वरुणस्य राज्ञः) राजा वरुण के न्यायकारी स्वरूप की पकड़ से (न मुच्यातै) नहीं छूट सकता। क्योंकि (अस्य) इस राजा के (स्पशः) गुप्तचर (दिवः) दिव्य दृष्टि वाले (सहस्राक्षाः) हजारों आँखोंवाले (इदम्) इस सारे विश्व में (प्रचरन्ति) घूमते फिरते रहते हैं वे (भूमिमति) भूमि को बींधकर, उसमें घुसकर (पश्यन्ति) स्पष्ट रूप में देख लेते हैं।

निष्कर्ष—वरुण का काम सत्यासत्य का विवेचन, पाप-पुण्य को पृथक् करके उसका फलरूप भोग देना है। वह ब्रह्मा है, सबसे बड़ा है, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक है। इसलिए पूर्ण न्यायकारी तथा दयालु है।

उसके इन गुणों पर विश्वास करोगे, उन पर आचरण करने का प्रयत्न करोगे तो तुम भी सत्यासत्य में विवेक कर सकोगे, ब्रह्मा बन सकोगे, सबको उदार तथा विशाल दृष्टि से देख सकोगे। हरेक की त्रुटियों के मूल कारण को समझकर उसके प्रति दया व सहानुभूति का दृष्टिकोण अपना सकोगे।

मार्ग

मा प्र गाम पथो वयं, मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।
मान्तः स्थुर्नो अरातयः॥—ऋ० १०-५७-१, अ० १३-१-५९

(इन्द्र) हे परमेश्वर—आप हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि—

(क) (वयं) हम (पथो मा प्रगाम) अपने स्वीकृत या प्राप्त मार्ग से विचलित न हों; उसे किसी भय या लोभ से न छोड़ें।

(ख) हम (सोमिनः) ऐश्वर्य की कामना करनेवाले—किसी भी रूप में सोम की साधना करनेवाले (यज्ञात् मा प्रगाम) यज्ञमार्ग से विचलित न हों।

(ग) (अरातयः) शत्रु या रोग या अदानभाव (नः अन्तः) हमारे मध्य, हमारे अन्तःकरण में, हमारे शरीर में (मा स्थुः) न ठहरें—न रहने पावें।

परिणाम—१. परमेश्वर की कृपा, इच्छा, न्याय-व्यवस्था (जो हमारे कर्मों पर आश्रित है) के बिना हमारी कोई इच्छा या साधना पूरी नहीं हो सकती।

२. प्रत्येक मार्ग प्रभु की ओर जा रहा है। आपने जिसे सत्य मानकर स्वीकार किया है, और जब तक उसे सत्य समझते हो, तब तक किसी भय या लोभ या मोह इत्यादि बाह्य या अन्तः शत्रुओं के वश में होकर उसे त्यागना नहीं चाहिए।

३. आप कोई क्षेत्र अपनाओ, किसी भी पन्थ या वाद में विश्वास करो, किन्तु उसमें **यज्ञमार्ग**—

(क) बड़ों का सत्कार, बराबरवालों के साथ प्रेम तथा छोटों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार अनिवार्य हैं।

(ख) कोई भी पेशा अपनाओ—किन्तु देवपूजा—संगतिकरण—व दान आवश्यक हैं।

(ग) साधन तथा उपाय पवित्र और स्वार्थरहित होने चाहिएँ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मृत्यु कविता है

विधुं दद्राणं समने बहूनां, युवानं सन्तं पलितो जगार ।
देवस्य पश्य काव्यं महित्वा, अद्या ममार स ह्यः समान ॥ऋ० १०-५५-५

ऋषि—बृहदुक्थो वामदेव्यः । देवता—इन्द्रः । त्रिष्टुप् । साम० ३२५, अथर्व०—१०-९

(समने) वाह्य तथा आन्तरिक संग्राम में (बहूनां दद्राणं) बहुतों को भगाने-सुलाने-संहारनेवाले (विधुम्) विविध कर्म कुशलतापूर्वक करनेवाले (युवानम्) सद्-असद् में विवेक करनेवाले, शुभजनों तथा कर्मों से मेल रखनेवाले तथा अशुभ जनों तथा कर्मों का त्याग करनेवाले को भी (पलितः जगार) सबका पालन करनेवाला, वृद्ध काल अपने गाल में रख लेता है ।

(देवस्य) दिव्य चमत्कारी प्रभु के (काव्यम्) इस काव्य को (पश्य) देख, समझ और कुछ सीखकर अपने जीवन-व्यवहार को बदल । जो व्यक्ति (महित्वा ह्यः समान) कल बड़ी महत्त्वपूर्ण स्थिति के कारण बड़ी अकड़ के साथ (सन्-अन) जी रहा था, सम्मान प्राप्त कर रहा था (सः) वही महत्त्वाकांक्षी, अहंकारी (अद्या) आज (ममार) मरा पड़ा है । अब इसकी ओर कोई देखता नहीं, इससे डरने और इसका आदर-मान करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता ।

निष्कर्ष—मनुष्य कितना ही शक्तिशाली, कर्मठ, विवेकी तथा सदाचारी क्यों न हो, उसे एक दिन काल के गाल में तो पहुँचना ही है । इसलिए अपने पद और उपलब्धि का गर्व नहीं करना चाहिए ।

वह प्रभु सबका पालक है, उसकी इच्छा के बिना किसी का पालन या मान संभव नहीं । फिर भी एक दिन वह सबको खा जाता है । अपनी नश्वरता तथा क्षणिकता को समझकर गर्व को त्याग ।

चमत्कारपूर्ण कृति को काव्य कहा जाता है । उस प्रभु के इस काव्यमय जगत् की सबसे अधिक चमत्कारपूर्ण बात यह है कि किसी की अकड़, किसी का गर्व शेष नहीं रहता । चाहे अत्याचारी या वीर हो, अथवा विवेचक या सुन्दर युवा हो, अथवा महत्त्वपूर्ण पद पर हो—एक दिन इस भूमि के गर्त में उस काल के गाल में अवश्य समा जाता है ।

इसलिए सदा उस महान् प्रभु की स्तुति करते हुए (बृहदुक्थः), सुन्दर दिव्य-गुणों को धारण करने का प्रयत्न करना चाहिए (वामदेव्यः) ।

इन्द्र बनने का यह भी एक मार्ग है ।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दीर्घ-दृष्टि

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्, द्राघीयां समनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येवचक्रा, अन्यमन्यमुपतिष्ठन्त रायः ॥ऋक् १०-११७-५

ऋषि—भिक्षुः आंगिरसः । देवता—धनदानम् । त्रिष्टुप् ।

(तव्यान्) धनवृद्ध पुरुष को चाहिए कि वह (नाधमानाय) रोगी होकर मांगने वाले को (पृणीयाद् इत्) देता ही रहे; सदा (द्राघीयान् सम् पन्थाम्) दूर तक जानेवाले मार्ग को (अनुपश्येत्) देखना चाहिए । (रथ्येवचक्रा) चलते हुए रथ के पहिये की तरह (उ हि) निश्चय ही (रायः) धन-सम्पत्तियाँ (आवर्तन्ते) ऊपर-नीचे, इधर-उधर बदलती रहती हैं, और इस प्रकार (अन्यम् अन्यम् उपतिष्ठन्ते) एक को छोड़कर दूसरे के पास पहुँच जाती हैं ।

निष्कर्ष—धनी पुरुष को अपने धन के गर्व में गरीब, दुःखी व रोगी का तिरस्कार नहीं करना चाहिए ।

कर्मफल के रूप में भी दुःख तथा रोग मिलते हैं, किन्तु यह मानकर दूसरे की सहायता न करना या उपेक्षा करना अल्पदृष्टि है । दीर्घ दृष्टि अपनानी चाहिए । यात्रा बड़ी लम्बी है, पता नहीं कब किसको जरूरत पड़ जाती है । प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि लक्ष्मी चंचला है । किसी के पास स्थिर नहीं रहती । इसलिए जब विधि अनुकूल हो तब दूसरों की भरपूर सहायता करनी चाहिए, यथासम्भव दान देना चाहिए । परार्थ की सहायता के लिए किए हुए दान से धन कभी घटता नहीं । इस कमी को प्रभु पूरा करता रहता है (अनुकूले विधौ देयं तत्पूरयिता हरिः) ।

यदि हमने दूसरों के कष्टों में सहायता और दान दिया होगा तो हमारे कष्टों में दूसरे भी सहायता करेंगे ।

धन तो रथचक्र की तरह इधर-उधर सरकता रहता है । उसका अभिमान करना अल्पदृष्टि तथा उसका दूसरों के उपकार में विनियोग दीर्घदृष्टि है ।

धन के नष्ट होने में कितनी देर लगती है ! भू-चाल का एक झटका, आग की एक लपट सारे जीवन की कमाई को क्षणभर में स्वाहा कर देते हैं । राजा का कोप और दुष्टों-डाकुओं का प्रताड़न मनुष्य को महल से निकालकर सड़क पर खड़ा कर देता है । इसलिए मनुष्य को दूरदर्शी बनकर अभावग्रस्तों के दुःखों को दूर करने के लिए सदा देते रहना चाहिए ।

अभय होने का उपाय

इदमुच्छ्रेयो अवसानमागां, शिवे मे द्यावापृथिवी अभूताम् ।
असपत्नाः प्रदिशो मे भवन्तु, न वै त्वा द्विष्मो अभयं नो अस्तु ॥अथर्व १९-१४-१

ऋषि—अथर्वा । देवता—द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप्,

(इदमुत्) यह लो (अवसानम्) वैर की समाप्ति पर (आगाम्) आ गया हूँ और इसलिए (श्रेयः आ अगाम्) चारों तरफ से कल्याण प्राप्त हो रहा है । (मे) मेरे लिए

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(द्यावापृथिवी) सम्पूर्ण द्युलोक तथा पृथिवीलोक के वासी (शिवे) कल्याणकारी (अभूताम्) बन गए हैं। (प्रदिशः) सब दिशाएँ अर्थात् दिशाओं में रहनेवाले प्राणी तथा पदार्थ (असपत्नाः) शत्रुभावनाशून्य (भवन्तु) हो जावें।

क्योंकि (वै) यथार्थ रूप में हम (त्वा) तुझसे (न द्विष्मः) किसी प्रकार की द्वेष भावना नहीं रखते, इसलिए (नः) हमारे लिए (अभयम् अस्तु) अभय हो, हमारे लिए किसी भी प्रकार का डर न रहे।

निष्कर्ष—हम किसी से द्वेष करेंगे, तो उससे भय होगा। हम द्वेष की समाप्ति कर देंगे, तो सब हमारा कल्याण चाहने लगेंगे, मित्र बन जाएँगे। भय समाप्त हो जाएगा।

एक बार अपने मन से द्वेष की समाप्ति करने के बाद यदि कोई व्यक्ति हमारा बुरा चाहता है, हमें कष्ट देता है तो भी हममें बदले की भावना नहीं उठनी चाहिए। यदि यह भावना पुनः जाग्रत् हो गई तो समझना कि अपने लिए प्रारम्भ हुआ श्रेयः पर्व समाप्त हो गया। ऐसी स्थिति में हमारे चारों ओर पहले से भी अधिक शत्रु प्रकट हो जाएँगे।

किन्तु यदि एक बार द्वेष को समाप्त करने का निश्चय कर लेने पर हम अडिग रहे, तब हमारा कोई कितना ही बुरा करे हमने तो उसके साथ निर्वैरता—मित्रता का ही व्यवहार रखना है तो सारी द्यावापृथिवी हमारे लिए कल्याण-वर्षा करने लगेगी। हम जिस दिशा या क्षेत्र में पदार्पण करेंगे, हमें सर्वत्र मित्र ही मित्र दिखाई देंगे।

द्वेष के अनुपात में भय बढ़ता है, मित्रता के अनुपात में निर्भयता बढ़ती है।

अभय होने का उपाय

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभूः, रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योः, आत्मानं धीरमजरं युवानम् ॥

अथर्व० १०-८-४४

ऋषि—कुत्सः। देवता—आत्मा। त्रिटुष्टुप्।

शुद्ध आत्मा में (अकामः) कोई कामना नहीं है। (धीरः) उसमें कभी किसी प्रकार की अधीरता नहीं होती, (अमृतः) वह कभी मरता नहीं, (स्वयंभू) स्वयमेव उत्पन्न है, उसका कोई उपादान कारण नहीं, (कुतश्चन) किसी भी प्रकार की (ऊनः नः) कमी नहीं है, (रसेन तृप्तः) अपने में पूर्णता की अनुभूति के रस से सदा तृप्त है।

(तम्) उपर्युक्त (धीरम्) धीर (अजरम्) अमृत (युवानम्) सब प्रकार के आनन्द से युक्त तथा कमियों से रहित (आत्मानम्) शुद्ध आत्मस्वरूप को (विद्वान्) जाननेवाला या प्राप्त करनेवाला ही (मृत्योः) मृत्यु से (न बिभाय) नहीं डरता है।

निष्कर्ष—शुद्ध आत्मा के उपर्युक्त गुण वर्णित हैं। जब आत्मा अपने को शरीर से मिश्रित कर लेता है—'शरीर आत्मा के भेद को भूल जाता है—तब उसमें कामनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। कामनाओं की पूर्ति के अभाव में कमियाँ अनुभव होती हैं, अतृप्ति प्रारम्भ होती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर स्वयंभू नहीं है ; अमृत नहीं है। जीर्ण होता है—अजर नहीं है। कामनाओं की विफलता से अधीरता प्राप्त होती है। शरीर में रोग-कष्ट आते हैं, दुःख होता है। दुःखों की स्मृति भय उत्पन्न करती है। भय अनन्त हैं, और उनमें सबसे बड़ा भय मृत्यु का है।

इसलिए सार वस्तु यह है कि आत्मा और शरीर को पृथक् करके देखो और इस अनुभूति को स्थिर बनाओ। कामनाएँ समाप्त होंगी। कमियाँ, अधीरता, अतृप्ति, जीर्णता दूर हो जाएगी। भय भागेंगे, तृप्ति का आनन्द बरसेगा, मृत्यु निःशेष हो जाएगी।

शुद्ध आत्मा में आरोपित शरीर के धर्मों को पृथक् देखकर उन्हें अपने से दूर फेंकना ही कुत्स (कुत्स अवक्षेपणे) बनना, कुत्स ऋषि की दृष्टि प्राप्त करना है।

अभय

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्। जेता शत्रून् विचर्षणिः।

ऋ० २। ४१। १२; अ० २०। ५७। १०

ऋषि—गृत्समदः। देवता—इन्द्रः।

(इन्द्रः) इन्द्र परमेश्वर, मुझे (सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि) सब दिशाओं से—दशाओं—परिस्थितियों—अवस्थाओं में (अभयंकरत्) अभय कर दे, रक्खे। (जेता शत्रून्) क्योंकि वह सब शत्रुओं को जीतनेवाला तथा (विचर्षणिः) विविध प्रकार से, विशिष्टि रूप में देखनेवाला, सर्वद्रष्टा=सर्वज्ञ है।

परिणाम—१. परमेश्वर सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ है, इसलिये सब शत्रुओं को जीतने में समर्थ है। हमारी दृष्टि भी जितनी विविध तथा विशाल होगी, उतना ही हम शत्रुजयी बनेंगे।

२. परमेश्वर की कृपा के बिना अभय संभव नहीं। परमेश्वर-विश्वास के बिना उसकी कृपा मिल नहीं सकती। यदि परमेश्वर विश्वासपूर्ण है, तो मनुष्य को कहीं भी, किसी भी दिशा में, किसी भी क्षेत्र में भय व्याप नहीं सकता। ईश्वर-विश्वासी ही निर्भय होता है।

परमेश्वर न्यायकारी तथा दयालु है। वह किसी को योग्यता तथा परिश्रम से कम नहीं देता। यदि किसी को कमी अनुभव होती है, तो उसे अपनी योग्यता या परिश्रम के सम्बन्ध में विचारना चाहिये और जितना मिला है उसमें सन्तोष करके मस्त रहना चाहिये।

गृत्समद—का यही अर्थ है, यही भावना है, यही दृष्टि है। जिसकी यह भावना हो जाएगी, उसके जीवन में इस मन्त्र का भाव स्वयमेव उतर आएगा।

अभय स्वस्ति ही मुक्ति

उरु नो लोकमनुनेषि विद्वान्, स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू, उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता॥

ऋ० ६-४७-८ अ०, १९-१५-४

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषिः—गर्गो भरद्वाजः। देवता—इन्द्रः। त्रिष्टुप्।

(विद्वान्) हे सर्वज्ञ प्रभो! आप (नः)हमें (उरु लोकम्) महान् विस्तृत लोक अथवा ज्ञानमय स्थिति में (अनुनेषि) पहुँचा देते हो, जहाँ (स्वर्वत् ज्योतिः) सुख की वर्षा करने वाला प्रकाश तथा (अभयम् स्वस्ति) अभय प्रदान करनेवाला अस्तित्व सदा प्राप्त रहता हैं।

हे (इन्द्र) सब ऐश्वर्यों के स्वामिन्! (ते स्थविरस्य बाहू) तुझ सनातन वृद्ध पुरुष के बाहू (ऋष्वा) सब विघ्न-बाधाओं का नाश करनेवाले तथा (बृहन्ता) अत्यन्त शक्तिशाली हैं, इसलिए हम उनकी (शरणा) शरण में (उपस्थेयाम) बैठ जाएँ।

(गर्गः) **अनर्थान् गिरति विनाशयति इति**—दूसरों के अनर्थों को दूर करनेवाला तथा उनमें (वाज) ज्ञान, बल, अन्न भरकर उनका भरण-पोषण करनेवाला ही सर्वज्ञ प्रभु की शरण में जाने का अधिकारी बनता है। केवल अपना भरण-पोषण करके अपने अनर्थों को दूर करनेवाला स्वार्थी व्यक्ति स्वर्वज्ज्योति तथा अभय स्वस्ति को नहीं पा सकता। वह ज्योति तथा स्वस्ति चाहे प्राप्त भी कर ले किन्तु स्वर्वज्ज्योति तथा अभय स्वस्ति उसे नहीं मिल सकेंगे।

प्रभु के बाहू बड़े विशाल तथा शक्तिशाली हैं। कोई भी अहंकारी तथा अत्याचारी उनसे बच नहीं सकता। जो सद्भावना से परहित के लिये अपनी अल्पशक्ति को जानकर उसकी शरण में जाता है, उसके सब दुःख तथा भय नष्ट हो जाते हैं। वह सुखमय प्रकाश तथा भयरहित स्थिति में पहुँच जाता है। यह स्थिति ही परम व्योम तथा अमृतत्व की स्थिति है। इसके अतिरिक्त किसी मुक्ति की कल्पना व्यर्थ है, क्योंकि उसके बाद किसी कामना की आवश्यकता नहीं रहती, कोई कामना शेष नहीं रहती।

जागरूक देव

इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति।
यन्ति प्रमादमतन्द्राः॥ ऋक् ८-२-१८

(देवाः) देवलोग (अतन्द्राः) कभी आलस्य नहीं करते, अपने कर्त्तव्य के प्रति जागरूक रहते हैं और (सुन्वन्तम) यज्ञ कर्म—किसी भी प्रकार का उत्पादन करनेवाले को (इच्छन्ति) पसन्द करते हैं, उसकी सहायता करते हैं, (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) सोनेवाले—आलसी को पसन्द नहीं करते, अपितु (प्रमादं) भूल करनेवाले का (यन्ति) नियमन करते हैं, दण्ड देते हैं। अथवा—(अतन्द्राः) आलस्य न करनेवाले लोग ही (देवाः) देवकोटि के बनते हैं और (प्रमादम्) प्रसन्नता को (यन्ति) प्राप्त करते हैं।

निष्कर्ष—१. देवता कभी आलस्य नहीं करते। जो आलस्य नहीं करेगा, वह देवता बन सकता है।

२. जो आलस्य नहीं करेगा, वही कुछ उत्तम पदार्थ प्राप्त कर पाएगा, और आवश्यकता से अधिक होने पर उसका दान कर सकेगा।

३. जो स्वयं आलसी नहीं, सदा जागरूक रहता है, वह काम करनेवाले, कुछ-न-कुछ उत्पादन करनेवाले को ही पसन्द करता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

 Digitization by eGangotri. Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

४. यदि तुम सोते रहोगे, कुछ न करोगे, न स्वयं कमाओगे और न दूसरों को दोगे तो भले लोग (देव) तुम्हें पसन्द नहीं करेंगे।

५. यदि तुम आलसी, निरुद्यमी, समाज पर बोझ बन गए तो समाज या देव लोग तुम्हारा नियन्त्रण करेंगे—दण्डित करेंगे, अतिरिक्त कर लगाएँगे।

६. यदि जागरूक रहोगे, कर्मठ रहोगे तो सदा प्रसन्न रहोगे। किसी प्रकार की चिन्ता या भय नहीं सताएगा।

मन्द-मन्द चलनेवाला ही दौड़ता है

तरत् स मन्दी धावति धारा सुतस्यान्धसः।
तरत् स मन्दी धावति॥ ऋक् ९-५८-१

शब्दार्थ—(मन्दी) स्तुति करनेवाला—प्रभुभक्त, स्वयं तृप्त रहनेवाला—आनन्दमग्न रहनेवाला (सुतस्य अन्धसः) उत्पन्न हुए इस जगत् के अन्धकारमय जंजालों को—काम-क्रोध आदि को (तरत्) तर जाता है, पार हो जाता है।

(सुतस्य अन्धसः) अपने अन्दर उत्पन्न किये गए आध्यानयुक्त प्राण के (धारणा) प्रवाह के साथ (धावति) ऊर्ध्वगति करता हुआ पवित्र हो जाता है।

(स मन्दी) वह आनन्द-तृप्त (तरत्) संसार-सागर को तर जाता है, क्योंकि वह (धावति) काम, क्रोधादि से शून्य होकर पवित्र बन जाता है।

निष्कर्ष—१. संसार के लोगों को प्रभुभक्त मन्द-मन्द चलता हुआ प्रतीत होता है, किन्तु वह प्रभु की ओर तेजी से भागा जा रहा होता है।

२. जो मन्द-मन्द चलना प्रारम्भ करता है, वही एक दिन भागने लगता है। जो चलना प्रारम्भ नहीं करेगा, वह भाग कैसे सकेगा?

३. विघ्नों के भय से या असफलता की सम्भावना से किसी काम को प्रारम्भ न करना कायरता है। ऐसे व्यक्ति को विजय कभी नहीं मिलती।

४. जो आत्मतृप्त है, जितना उसे मिला है उतने से ही सन्तुष्ट है, वही व्यक्ति आनन्दमग्न रह सकता है।

५. इस जगत् को पार करने के उपाय हैं—

(क) ध्यान—(अन्धसः) (ख) स्तुति (मन्दी) (ग) मन्द-मन्द कर्म प्रारम्भ= ज्ञान—भक्ति—कर्म।

६. तीनों का समन्वय हो जाए तो उत्तम, अन्यथा जिस मार्ग पर भी चलना प्रारम्भ करो, आस्था के साथ चलते चले जाओ; गति चाहे जितनी मन्द क्यों न हो, लक्ष्य-प्राप्ति अवश्य होगी। कछुए और खरगोश की कहानी याद कीजिये।

रम जाओ

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये॥ ऋक् १-९१-१३

शब्दार्थ—(गावो न यवसेष्वा) गौएँ जिस प्रकार जौ इत्यादि के खेत में पहुँचकर रम जाती हैं, वहाँ से निकलना नहीं चाहतीं या इन्द्रियाँ जैसे अपने विषयों-भोग्यपदार्थों में रमी रहती हैं, उन्हें छोड़ना नहीं चाहतीं तथा (मर्य इव) जैसे मनुष्य (स्व ओक्ये) अपने घर में रमा रहता है, बाहर विदेश जाना नहीं चाहता, और यदि चला भी जाए तो अपने घर में पहुँचने के लिए लालायित रहता है, उसे याद करता रहता है—उसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi